Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 9, June-2019, ISSN 2230-7540

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था तथा विज्ञान एवं प्रावैधिकी एक अध्ययन ऐतिहासिक काल से गुप्तकाल तक

Dr. Sanjay Kumar*

Department of History, Magadh University, Bodh Gaya, Bihar

सार – ***प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था, संस्कृत अभिलेखों के आधार पर एक जमीन तोड़ने का प्रयत्न है। अधिकतर अर्थव्यवस्था के बारे में चर्चा, समकालीन पुस्तकों के साक्ष्य के आधार पर होती रही है। वे साक्ष्य आवश्यक नहीं कि राजशासन से किसी प्रकार सम्बन्ध रखते हों। प्राचीन अभिलेख, राजशासन के रीति-नीति पर अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक रूप से ही अपने समय की स्थिति की झाँकी देते हैं। उनके आधार पर भाषा केन्द्रित अध्ययनों के द्वारा कला, इतिहास और धार्मिक प्रयोजनों से किये गये दान, यज्ञ के विषय में जो प्रामाणिक जानकारी मिलती है, इस पर विशद अध्ययन हुआ है किन्तु अभिलेखों के आधार पर अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत भूमि तथा उससे जुड़े पक्ष-कृषि व्यवस्था, सिंचाई वाणिज्य-व्यापार, राजस्व प्रबन्धन आदि के बारे में व्यवस्थित एकान्तिक अध्ययन बहुत कम हुआ है। इस दृष्टि से शोधकर्ता कमल ने बड़े परिश्रम और ईमानदारी के साथ प्रबल, तटस्थ भाव से एक अनछुये क्षेत्र का परिमापन किया है।***

----------X----------

परिचय

आर्थिक जीवन किसी भी समाज की सर्वतोमुखी अभिवृद्धि का आधार होता है। पुरुषार्थों में 'अर्थ' की गणना भी इस तथ्य की ओर संकेत करती है। दुर्भाग्यवश भारतीय चिन्तन परम्परा को आध्यात्मिक या पारलौकिक करार देते हुए आर्थिक-विमर्श के लिए अनुपादेय घोषित कर दिया जाता है। इस तरह का भ्रम आधारहीन है और तथ्यों की अनदेखी कर प्रचलित हुआ है। भारतीय समाज और इसकी सांस्कृतिक प्रथाएँ तथा परम्पराओं की जड़ें गहरी हैं और उनमें निरन्तरता है। पाश्चात्य विचारों के प्रभुत्व तथा औपनिवेशिक मानसिकता के कारण ये आवरण से आच्छादित हो गयी हैं और उन्हें सुग्राह्य ढंग से उपस्थित करना आज की एक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक चुनौती है। ऐसा करना मात्र आत्मश्लाघा न होकर भारतीय यथार्थ की दृष्टि से पर्यालोचन और आवश्यक परिष्कार का मार्ग प्रशस्त करेगा। इस प्रकार का प्रयास ज्ञान के अनेक क्षेत्रों में आरम्भ हुआ है। देशज ज्ञान परम्परा का पुनराविष्कार और अनुसन्धान देश को आत्मनिर्भर बनाने में भी सहायक सिद्ध हो रहा है।

भारतीय ज्ञान परम्परा इस दृष्टि से भी विचारणीय है कि उसके तत्त्व आश्चर्यजनक रूप से मनुष्य और समग्र सृष्टि को सम्बोधित करते हैं। भूमण्डलीकरण के वर्तमान समय में जब परस्पर निर्भरता वैश्विक जीवन का मूलमन्त्र बनती जा रही है, भारतीय जीवन दृष्टि और भी प्रासंगिक हो गयी है। स्मरणीय है कि भारतीय ज्ञान परम्परा मात्र शास्त्रीय नहीं है जैसा कि प्रायः प्रचलित किया गया है। शास्त्र के साथ वह लोक व्यवहार में भी अवस्थित है। शास्त्र और लोक दोनों एक दूसरे के साथ सम्पृक्त रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत अध्ययन भारतीय अर्थव्यवस्था पर संस्कृत अभिलेखों के सन्दर्भ में विचार की परम्परा को आगे बढ़ाने का प्रयास करता है।

संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ निर्विवाद रूप से भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा ज्ञान-विज्ञान के विपुल भण्डार हैं। इस आधार पर प्रायः देववाणी संस्कृत को श्रद्धा और आदर तो दिया जाता है परन्तु व्यवहृत भाषा के रूप में उसे जीवन्त नहीं माना जाता। प्राचीन भारतीय अभिलेखों में संस्कृत का प्रचुर उपयोग इस रूढ़ि को तोड़ता है और इसका प्रमाण प्रस्तुत करता है कि यह दैनिक व्यवहार तथा राजकाज की भी भाषा थी। आज जब हम प्राचीन भारतीय इतिहास को समझने चलते हैं तो संस्कृत भाषा के अभिलेखों से महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलती है।

इतिहास के आधुनिक विद्यार्थी के लिए प्राचीन भारत को समझना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। यहाँ समय निरन्तर

www.ignited.in

गतिमान है और जीवन से सम्बन्धित तथ्य व घटनाएँ वास्तव में जीवन्त परम्परा का ही भाग है। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय इतिहास के समग्र अध्ययन के स्रोत के रूप में संस्कृत अभिलेखों का विशेष महत्त्व है। इन अभिलेखों में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री समकालीन तथ्यों तक पहुँचने के लिए हमारा मार्ग प्रशस्त करती है। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित ऐतिहासिक अध्ययन की सुदीर्घ परम्परा है, परन्तु इस दृष्टि से मुख्य आधार के रूप में अभिलेखों के व्यापक अध्ययन का अभाव रहा है। परिणामतः अनेक तथ्य अनुद्घाटित रह गये हैं। प्रस्तुत शोध की संकल्पना इसी अभिलेखीय सामग्री को इतिहास-स्रोत स्वीकार कर प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन को समझने के लिए की गयी।

प्राचीन भारतीय आर्थिक जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक व सैद्धान्तिक दोनों ही दृष्टियों से ग्रन्थों का प्रणयन सुदीर्घकाल से होता आया है। परन्तु इस दृष्टि से मुख्य आधार के रूप में अभिलेखों के आद्योपान्त अध्ययन का अभाव रहा है। परिणामतः बहुत कुछ तथ्य अनुद्घाटित रह गये हैं तथा आर्थिक जीवन सम्बन्धी विवरण बहुत ही सरसरी रह गया है।

अतः इस वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर प्रस्तुत अध्ययन की संकल्पना की गयी है। यहाँ अभिलेखीय सामग्री को व्यवस्थित कर प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था के विविध आयामों को यथासम्भव समग्रता के आलोक में प्रस्तुत करने का प्रयास रहा है। विषय की दृष्टि से इस अध्ययन को आठ अध्यायों में व्यवस्थित किया गया है। अध्याय एककृप्रस्तुत अध्ययन की आधारभूमि में विवेच्य विषय के तर्क-संगत चयन हेतु किये गये प्रयासों को संक्षिप्त एवं सारगर्भित रूप में अभिलेखीय पृष्ठभूमि पर रखा है।

शोध का विषय 'आठवीं शताब्दी तक भारतीय अर्थव्यवस्था के बदलते आयाम' है, अतः इस कालावधि में सम्पूर्ण भारतवर्ष के राजवंशों के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिदृष्य को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि इसका सम्बन्ध स्थानीय अर्थव्यवस्था से है। अध्याय दो में इस दृष्टिकोण को ध्यान में रख, आठवीं शताब्दी तक की कालावधि के राजनीतिक परिदृश्य को प्रस्तुत किया है।

अध्याय तीन-भूप्रबन्धन में भूमि के प्रकार तथा भू-स्वामित्व व उसके हस्तान्तरण से सम्बन्धित विविध पक्षों का अभिलेखों के आलोक में परीक्षण है। भूमि के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए भूस्वामित्व से सम्बन्धित वैधानिक पहलू पर विचार के संकेत भी अभिलेखों में स्पष्टतः दिखलाई पड़ते हैं। जहाँ भूमि के क्रय-विक्रय का प्रसंग अभिलेखों में दृष्टिगत होता है, वहाँ मौद्रिक प्रणाली की व्यवस्था भी दिखलाई पड़ती है। इस सन्दर्भ में सोने, चाँदी व ताँबे के सिक्कों की उपयोगिता दृष्टिगत होती है।

अध्याय चार-भूमापन में भूमि के माप के इकाई का विश्लेषण है। इस अध्याय से तत्कालीन भूमाप की इकाई तथा इससे सम्बन्धित पहलुओं को भी देखा जा सकता है।

अध्याय पाँच-कृषि व सिंचाई प्रबन्धन में कृषि की व्यापकता का स्पष्टतः पता चलता है। आज की ही तरह कृषि और सिंचाई तत्कालीन आर्थिक जीवन को निश्चित तौर पर एक महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करते थे।

वाणिज्य और व्यापार नामक अध्याय छः में तत्कालीन बाजार व्यवस्था व आर्थिक प्रबन्धन को अभिलेखों के आलोक में प्रस्तुत किया गया है। कृषि का सम्बन्ध बाजार, उत्पादित वस्तुओं तथा उत्पादक व व्यापारिक समुदाय से प्राचीन काल से ही रहा है। इस बात की पुष्टि समकालीन संस्कृत अभिलेखों से हो जाती है।

राजस्व प्रबन्धन नामक अध्याय सात में, राजस्व से सम्बन्धित वैधानिक, सैद्धान्तिक व व्यावहारिक तीनों ही पक्षों का निर्देशन तत्कालीन अभिलेखों से होता है। इन्हीं को आधार बनाकर राजस्व प्रबन्धन से जुड़े विविध पक्षों को प्रस्तुत अध्याय में व्यवस्थित किया है।

भारतीय अर्थव्यवस्था

भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में सातवें स्थान पर है, जनसंख्या में इसका दूसरा स्थान है और केवल: क्षेत्रफल के साथ भारत विश्व की जनसंख्या के १७% भाग को शरण प्रदान करता है।१९९१ से भारत में बहुत तेज आर्थिक प्रगति हुई है जब से उदारीकरण और आर्थिक सुधार की नीति लागू की गयी है और भारत विश्व की एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभरकर आया है। सुधारों से पूर्व मुख्य रूप से भारतीय उद्योगों और व्यापार पर सरकारी नियंत्रण का बोलबाला था और सुधार लागू करने से पूर्व इसका जोरदार विरोध भी हुआ परंतु आर्थिक सुधारों के अच्छे परिणाम सामने आने से विरोध काफी हद तक कम हुआ है। हंलाकि मूलभूत ढाँचे में तेज प्रगति न होने से एक बड़ा तबका अब भी नाखुश है और एक बड़ा हिस्सा इन सुधारों से अभी भी लाभान्वित नहीं हुये हैं।

www.ignited.in

पाँचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था

2017 में भारतीय अर्थव्यवस्था मानक मूल्यों (सांकेतिक) के आधार पर विश्व का पाँचवा सबसे बड़ा अर्थव्यवस्था है। अप्रैल 2014 में जारी रिपोर्ट में वर्ष 2011 के विश्लेषण में विश्व बैंक ने 'क्रयशक्ति समानता' (परचेजिंग पावर पैरिटी) के आधार पर भारत को विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था घोषित किया। बैंक के इंटरनैशनल कंपेरिजन प्रोग्राम (आईसीपी) के 2011 राउंड में अमेरिका और चीन के बाद भारत को स्थान दिया गया है। 2005 में यह 10वें स्थान पर थी। 2003-2004 में भारत विश्व में 12वीं सबसे बडी अर्थव्यवस्था थी। संयुक्त राष्ट्र सांख्यिकी प्रभाग (यूएनएसडी) के राष्ट्रीय लेखों के प्रमुख समाहार डाटाबेस, दिसम्बर 2013 के आधार पर की गई देशों की रैंकिंग के अनुसार वर्तमान मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद के अनुसार भारत की रैंकिंग 10 और प्रति व्यक्ति सकल आय के अनुसार भारत विश्व में 161वें स्थान पर है। सन 2003 में प्रति व्यक्ति आय के लिहाज से विश्व बैंक के अनुसार भारत का 143 वाँ स्थान था।

इतिहास

भारत एक समय मे सोने की चिडिया कहलाता था। आर्थिक इतिहासकार एंगस मैडिसन के अनुसार पहली सदी से लेकर दसवीं सदी तक भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था थी। पहली सदी में भारत का सकल घरेलू उत्पाद (ळक्च्) विश्व के कुल जीडीपी का 32.9% था य सन् 1000 में यह 28.9% था य और सन् 1700 में 24.4% था।

ब्रिटिश काल में भारत की अर्थव्यवस्था का जमकर शोषण व दोहन हुआ जिसके फलस्वरूप 1947 में आजादी के समय में भारतीय अर्थव्यवस्था अपने सुनहरी इतिहास का एक खंडहर मात्र रह गई।

आजादी के बाद से भारत का झुकाव समाजवादी प्रणाली की ओर रहा। सार्वजनिक उद्योगों तथा केंद्रीय आयोजन को बढ़ावा दिया गया। बीसवीं शताब्दी में सोवियत संघ के साथ साथ भारत में भी इस प्रणाली का अंत हो गया। 1991 में भारत को भीषण आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा जिसके फलस्वरूप भारत को अपना सोना तक गिरवी रखना पड़ा। उसके बाद नरसिंह राव की सरकार ने वित्तमंत्री मनमोहन सिंह के निर्देशन में आर्थिक सुधारों की लंबी कवायद शुरु की जिसके बाद धीरे धीरे भारत विदेशी पूँजी निवेश का आकर्षण बना और संराअमेरिका, भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक सहयोगी बना। १९९१ के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था में सुदृढ़ता का दौर आरम्भ हुआ।

इसके बाद से भारत ने प्रतिवर्ष लगभग 8% से अधिक की वृद्धि दर्ज की। अप्रत्याशित रूप से वर्ष 2003 में भारत ने 8.4 प्रतिशत की विकास दर प्राप्त की जो दुनिया की अर्थव्यवस्था में सबसे तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था का एक संकेत समझा गया। यही नहीं 2005-06 और 2007-08 के बीच लगातार तीन वर्षों तक 9 प्रतिशत से अधिक की अभूतपूर्व विकास दर प्राप्त की। कुल मिलाकर 2004-05 से 2011-12 के दौरान भारत की वार्षिक विकास दर औसतन 8.3 प्रतिशत रही किंतु वैश्विक मंदी की मार के चलते 2012-13 और 2013-14 में 4.6 प्रतिशत की औसत पर पहुंच गई। लगातार दो वर्षों तक 5 प्रतिशत से कम की स.घ.उ. विकास दर, अंतिम बार 25 वर्ष पहले 1986-87 और 1987-88 में देखी गई थी।[2]

प्राचीन और मध्ययुगीन विशेषताएँ

यद्यपि प्राचीन भारत में महत्त्वपूर्ण नगरीय जनसंख्या पायी जाती है लेकिन भारत की अधिकत्तर जनसंख्याँ गाँवों में निवास करती थी जिसकी अर्थव्यवस्था विस्तृत रूप से पृथक और आत्मनिर्भर रही है। आबादी का मुख्य व्यवसाय कृषि था और कपड़ा, खाद्य प्रसंस्करण तथा शिल्प जैसे हाथ आधारित उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराने के अलावा खाद्य आवश्यकताएँ भी कृषि से पूर्ण होती थी। कृषकों के अलावा अन्य वर्गों के लोग नाई, बढ़ैइ, चिकित्सक (आयुर्वेद चिकित्सक अथवा वैद्य), सुनार, बुनकर आदि कार्य करते थे।

प्राचीन काल एवं ऐतिहासिक काल से गुप्तकाल तक

500 ईसापूर्व

महाजनपदों द्वारा चाँदी के पंच किए हुए सिक्के (punch & marked coins)[1], ढाले जाते थे। इन सिक्कों ने सघन व्यापार में तथा नगरीय विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।.

1 ई.

विश्व अर्थव्यवस्था में भारतीय अर्थव्यवस्था का हिसा 52.9% था जो एक कीर्तिमान है।

1000

विश्व अर्थव्यवस्था में भारतीय अर्थव्यवस्था का हिसा 33% था, जो संसार में सबसे अधिक हिस्सा है।

2014

तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था- अप्रैल 2014 में जारी वर्ल्ड बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारतीय अर्थव्यवस्था परचेजिंग पावर पैरिटी के लिहाज से जापान को पछाड़कर दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गयी है। बैंक के इंटरनैशनल कंपेरिजन प्रोग्राम (आईसीपी) के 2011 राउंड में अमेरिकी और चीन के बाद भारत को स्थान दिया गया है। इससे पहले 2005 के सर्वेक्षण में भारतीय अर्थव्यवस्था 10वें स्थान पर थी

1500

विश्व अर्थव्यवस्था में भारतीय अर्थव्यवस्था का हिसा 24.5% था जो चीन के बाद दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था थी। इस काल में विश्व अर्थव्यवस्था में चीन का हिस्सा लगभग २५% था।

1600

भारत की आय 17.5 मिलियन पाउण्ड थी (जनसंख्या लगभग 150 मिलियन) जो सन् 1800 में ब्रिटेन की सम्पूर्ण ट्रेजरी (लगभग 16 मिलियन पाउण्ड) से भी अधिक थी।

1700

भारत की अर्थव्यवस्था, विश्व की सम्पूर्ण आय की 24.4% के बराबर थी जो विश्व में सर्वाधिक थी।

ऐतिहासिक काल से गुप्तकाल तक गुप्त साम्राज्य एक प्राचीन भारतीय साम्राज्य था जो 3 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से 543 ईस्वी तक के मध्य में विद्यमान था। इसके अंचल में, लगभग 319 से 543 CE तक, इसने भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश हिस्से को कवर किया। कुछ इतिहासकारों द्वारा इस अवधि को भारत का स्वर्णिम काल माना जाता है। साम्राज्य के शासक राजवंश की स्थापना राजा श्री गुप्त ने की थीय राजवंश के सबसे उल्लेखनीय शासकों में चंद्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त द्वितीय उर्फ विक्रमादित्य थे। पाँचवीं शताब्दी के संस्कृत कवि कालिदास ने गुप्तकाल के बारे में इक्कीस राज्यों पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया है, जिसमें भारत के भीतर और बाहर, पारसीक के राज्य, हूण, कम्बोज, पश्चिम में स्थित जनजातियाँ और पूर्व में ऑक्सस घाटियाँ, किन्नर शामिल हैं। किरात और अन्य।

इस अवधि के उच्च बिंदु महान सांस्कृतिक विकास हैं जो मुख्य रूप से समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल के दौरान हुए थे। महाभारत और रामायण जैसे कई साहित्यिक स्रोत, इस अवधि के दौरान विहित थे। Period, गुप्त काल ने कालिदास, आर्यभट्ट, वराहमिहिर और वात्स्यायन जैसे विद्वानों का निर्माण किया जिन्होंने कई अकादमिक क्षेत्रों में महान उन्नति की। गुप्त काल के दौरान विज्ञान और राजनीतिक प्रशासन नई ऊंचाइयों पर पहुंच गया।[12] इस अवधि ने वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला में उपलब्धियों को जन्म दिया, जिसने रूप और स्वाद के मानकों को निर्धारित किया कि, ने न केवल भारत में, बल्कि उसकी सीमाओं से परे कला के पूरे पाठ्यक्रम को निर्धारित किया। मजबूत व्यापारिक संबंधों ने भी इस क्षेत्र को एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केंद्र बना दिया और इस क्षेत्र को एक आधार के रूप में स्थापित किया, जो आसपास के राज्यों और बर्मा, श्रीलंका और दक्षिण पूर्व एशिया के क्षेत्रों को प्रभावित करेगा। अविश्वसनीय स्रोत? पुराण, पहले की लंबी कविताएँ विभिन्न विषयों, इस अवधि के आसपास लिखित ग्रंथों के लिए भी प्रतिबद्ध हैं।

साम्राज्य अंततः कई कारकों की वजह से मर गया, जैसे कि मध्य पूर्व एशिया के साथ-साथ अपने स्वयं के तत्कालीन सामंतों के कारण क्षेत्र और साम्राज्यिक अधिकार की पर्याप्त हानि, मध्य एशिया के लिए हुना लोगों (किडराइट्स और अल्कॉन हूणों) द्वारा आक्रमण। 6 वीं शताब्दी में गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद, भारत पर फिर से कई क्षेत्रीय राज्यों का शासन था।

इतिहासकार एक वैज्ञानिक की भाँति उपलब्ध सामग्री का परीक्षण करके अतीत का सही चित्रा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। उसके लिए साहित्यिक साधन, पुरातात्त्विक साधन और विदेशियों के वर्णन सभी का महत्त्व है। प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए शुद्ध ऐतिहासिक साहित्यिक सामग्री अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम उपलब्ध है। भारत में यूनान के हिरोडोटस या रोम के लिवी जैसे इतिहास-लेखक नहीं हुए, इसलिए कुछ पाश्चात्य विद्वानों की यह धारणा बन गई थी कि भारतीयों को इतिहास की ठीक समझ ही नहीं थी। परन्तु ऐसा समझना गलत होगा। वस्तुस्थिति यह है कि प्राचीन भारतीयों का इतिहास का उद्देश्य आधुनिक इतिहासकारों के उद्देश्य से पूर्णतया भिन्न था। आज का इतिहासकार ऐतिहासिक घटनाओं में कार्य-कारण संबंध स्थापित करने का प्रयत्न करता है किंतु प्राचीन इतिहासकार

www.ignited.in

केवल उन घटनाओं का वर्णन करता था जिनसे जनसाधारण को कुछ शिक्षा मिल सके।

महाभारत में इतिहास की जो परिभाषा दी है उससे भारतीयों की इतिहासविषयक समझ पर प्रकाश पड़ता है। इस ग्रंथ के अनुसार ऐसी प्राचीन रुचिकर कथा जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की शिक्षा मिल सके 'इतिहास' कहलाती है। प्राचीन काल में भारतवासी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-इन चारों पुरुषार्थों को जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक समझते थे। इन पुरुषार्थों को करने की प्रेरणा देने में इतिहास भी एक साधन था, इसलिए प्राचीन भारतीय इतिहासकार उन घटनाओं को कोई महत्त्व नहीं देते थे, जिनसे इन चारों पुरुषार्थों की शिक्षा न मिल सके। इसीलिए प्राचीन भारत का इतिहास राजनीतिक कम और सांस्कृतिक अधिक है।

इतिहासकार प्राचीन भारतीय इतिहास को उपलब्ध सामग्री के आधार पर तीन भागों में बाँटते हैं। प्रागैतिहासिक काल का इतिहास लिखते समय इतिहासकार को पूर्णतः पुरातात्त्विक साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है। आद्य इतिहास लिखते समय भी मुख्यतः पुरातात्त्विक साक्ष्यों पर ही निर्भर रहना पड़ता है परन्तु यदि कुछ एक साहित्यिक स्रोत मिलने लगते हैं और इतिहास लिखते समय

भारतीय अर्थव्यवस्था वह इन दोनों साधनों के (पुरातात्त्विक तथा साहित्यिक) अतिरिक्त विदेशियों के वर्णनों का भी भारतीय इतिहास को जानने के लिए उपलब्ध सामग्री को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है।

पुरातात्त्विक तथा साहित्यिक। इन स्रोतों को आगे अनेकों भागों तथा उपभागों मे बाँटा जा सकता है। निम्न चार्ट की सहायता से इसे भली भाँति समझा जा सकता है उपयोग करता है। इन सभी स्रोतों का उपयोग करके इतिहासकार काल विशेष का सही-सही चित्रा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है।

प्राचीन काल में आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन इतने तेज नहीं थे जितने कि सामाजिक क्षेत्रा में। परन्तु यह कहना सरासर गलत होगा कि प्राचीन काल में आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन एकदम अनुपस्थित थे अर्थात् Asiatic mode of production से साम्यवादी इतिहासकार भी सहमत नहीं हैं। प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास के अध्ययन से परिवर्तन के कुछ चरण स्पष्ट उभरते हैं जैसे यदि हड़प्पा संस्ड्कृति की नगर व्यवस्था वैदिककालीन पशुचारण तथा हल द्वारा कृषि पर आधारित आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था मौर्यपूर्व काल में लोहे की जानकारी तथा व्यापक उपयोग और शहरों का पुनः उत्थान मौयकाल में आर्थिक स्त्रोतांे पर राजकीय नियन्त्राण, मौर्योत्तर काल में मुद्रा अर्थव्यवस्था तथा रोम साम्राज्य के साथ व्यापारिक सम्बन्धों का चरम तो गुप्तकाल की अर्थव्यवस्था की विशेषता रही है।

भूमि व्यवस्था का आंशिक सामंतीकरण और उत्पादन की स्थानीय इकाइयों का उदय। गुप्तकाल में इन्हीं कारकों को मजबूत बनाने के लिए उसी प्रकार की आर्थिक नीतियाँ अपनाई गई। कृषि, शिल्प अर्थात् विविध उद्योगधन्धे तथा व्यापार के विकास की दशा से इसकी पुष्टि हो जाती है।

कृषि कर्मः आजकल के समान गुप्तकाल में भी भारत कृषि प्रधान देश था। कामन्दक के अनुसार पशुपालन, व्यापार और कृषि कार्य को वार्ता कहते थे। रघुवंश में भी इन पेशों को राष्ट्रीय आय का प्रमुख साधन बताया गया है। गुप्तकाल में कृषि योग्य भूमि की माँग अधिक होने के कारण नारद ने व्यवस्था की है कि अगर किसी खेत का मालिक बिना उत्तराधिकारी छोड़े मर गया है या किसी अज्ञात स्थान को चला गया है तो कोई भी अजनबी उस खेत को जोत सकता है। मालिक के लौट आने पर वह मालिक से जुताई में लगे व्यय को पाने का हकदार होगा। राजा लोग प्रायः भूमि को विशेषतःबंजर भूमि को कर मुक्त रूप में दान देते थे। इससे बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने की प्रवृत्ति सबल हुई।

गुप्तकाल में कृषि वर्ग के विविध पक्षो का कुछ विस्तृत ज्ञान वराह मिहिर की 'बृहत्संहिता' और 'अमरकोश' से होता है। बृहत्संहिता में ऋतु-विज्ञान संबंधी अनेक बातों का विचार किया गया है। जिनसे स्पष्ट है कि उस युग में भी भारतीय कृषक अपनी समृद्धि के लिए प्रकृति पर निर्भर था। इन दोनों ग्रंथ एवं बृहस्पति आदि से हमें तत्कालीन युग में प्रचलित हल की बनावट, खेतों के लिए भूमि तैयार किए जाने की विधि, कृषि वर्ग में काम आनेवाले औजारों, भूसी निकालने की प्रक्रिया, खेत की जुताई, विभिन्न अन्नों और फलों आदि की बुवाई और स्थानान्तरण-रोपण के शुभ मुहूर्त तथा विधियों,वनस्पतियों के रोगों और उनके उपचार अच्छे खेत की स्थिति, विभिन्न खाद्यों और अन्न पैदावारों की किस्मों आदि का पर्याप्त ज्ञान होता है। आर0एस0 शर्मा के अनुसार अमरकोश में हलकी फसल के लिए पाए नाप दिए गए हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि, यह सबसे महत्त्वपूर्ण कृषि उपकरण सहज रूप से उपलब्ध था। कृषि कार्य में फासलों का प्रयोग किया गया था। भारी फसल का प्रयोग गहरी जुताई व परती भूमि को खेती के तहत लाने के लिए करते थे।

फसलें: वराहमिहिर ने तीन फसलों का उल्लेख किया है। एक फसल श्रावण के महीने में तैयार होती थी, दूसरी वसंत में और तीसरी चैत्रा या वैशाख में। साधारणतया सभी तरह की उपज

जो आजकल होती है उस युग में भी हुआ करती थीं। ऐसी फसलों की चर्चा अमरकोश तथा गुप्तकाल के पर्व में भी हुआ है। गेहूँ, धान, ज्वार, बाजरा, चना, मटर, दालें, तिल, सरसों, कपास, नील अलसी, अदरक, सब्जियाँ, काली मिर्च, आदि विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता था। उस युग में धान के जैसे शाले और कगल आदि अनेक प्रकार हो गए थे। यही नहीं चावल की एक फसल तो 60 दिनों में तैयार कर ली जाती थी।

गुप्तकाल तक भारत में भूमि पर राजा के मूलभूत पूर्णस्वामित्व की सिद्धांत लोकप्रिय हो चुका था।मनु ने तो राजा को समस्त भूमि का सर्वोच्च स्वामी माना है। गौतम ने ब्राह्मणों के अतिरिक्त सबको राजा की सम्पत्ति बताया है। मेगस्थनीज के अनुसार भारत में किसान राजा को भूमिकर और उपज का एक चैथाई हिस्सा देते थे क्यंोकि यहाँ समस्त भूमि राजा की सम्पत्ति मानी जाती थी।

गुप्तकाल में भी राजा का समस्त भूमि पर स्वामित्व अभिलेखों से संकेतिक है। विविध अभिलेखों से स्पष्ट है कि गुप्तकालीन नरेश सम्पूर्ण गाँवों अथवा ग्रामों को धार्मिक उद्देश्यों हेतु दान देते थे। ऐसा वे तभी कर सकते थे जब भूमि पर उनका मूलभूत अधिकार माना जाता रहा होगा। ऐसे उदाहरणों से दान पाने वाला न केवल राज्य को मिलनेवाले कुछ करों को वसूल करने का अधिकारी हो जाता था वरन् कभी-कभी उसे अन्य सभी प्रकार के करो को वसूल करने का अधिकार मिल जाता था। जब कोई नागरिक व्यक्तिगत रूप से कोई भूमिक्षेत्रा दान देता था तो उसे प्रशासन से इसकी अनुमति लेनी होती थी क्योकि किसी भूमि को दान मुक्त करने का अधिकार केवल राजा का ही था। ज्यादातर अभिलेखों के अनुसार एक बार दान देने के बाद कोई राजा या उसके वंशज उसे वापिस नही ले सकते थे लेकिन कुछ दान पत्रों में स्पष्टतः कहा गया है कि दान पाने वाले के द्वारा राजद्रोह, ब्रह्महत्या, राजा को विष देना, चोरी और अन्य कुछ अपराध किए जाने पर दान में दी गई भूमि वापिस ली जा सकती थी।

अगर किसी ब्रह्मणेत्तर व्यक्ति का कोई पुत्रा भाई और पत्नी नहीं होती थी तो उसके मरने पर राजा उसकी सम्पत्ति का मालिक समझा जाता था। राजा का भूमि पर स्वामित्व उसके द्वारा वसूल किए जानेवाले करो से भी संकेतित है। बहुत सी बंजर और उर्वर भूमि राजा के व्यक्तिगत अधिकार में होती थी। निधियों व खानो पर राजा का अधिकार माना जाना अभिलेखों तथा नारद से प्रमाणित है।

अध्ययन की आधार-भूमि

प्राचीन भारत के अभिलेख समकालीन जीवन के ज्ञान के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। प्रस्तुत अध्ययन इन अभिलेखों की सहायता से प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुशीलन का प्रयास है। भारतीय इतिहास के अध्येताओं ने प्राचीन भारत के आर्थिक पक्ष पर भी प्रकाश डाला है, परन्तु अभिलेखों को आधार बनाकर इस ओर कम ही प्रयास हुए हैं। प्रस्तुत अध्ययन का लक्ष्य प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था के विविध पक्षों को तत्कालीन अभिलेखों के आलोक में देखना है। भौगोलिक दृष्टि से सम्पूर्ण भारत से संस्कृत अभिलेखों की परम्परा ईसा की दूसरी शताब्दी से मिलने लगती है।

अवधि के विस्तार के बावजूद अविच्छिन्न परम्परा के कारण 'भारतीय इतिहास' किसी भी अध्येता के समक्ष एक कौतूहलपूर्ण चुनौती बन जाता है। काल के प्रति भारतीय अवधारणा इतिहास के प्रति उनके दृष्टिकोण को पश्चिमी दृष्टिकोण की तुलना में एक भिन्न धरातल पर स्थापित करती है। यहाँ पर 'काल' खण्डों में न बँट कर प्रत्यावर्तनशील प्रवाह माना गया है। यहाँ पर साहित्य, मिथक तथा इतिहास का अन्तर उतना स्पष्ट नहीं है जितना कि पाश्चात्य परम्परा में है। इसीलिए भारतीय इतिहास दृष्टि भिन्न प्रकार की रही है। भारतीय इतिहासकार यथातथ्य वर्णन को परम लक्ष्य नहीं मानते। इसीलिए इतिहास के आधुनिक अर्थ में अनैतिहासिक भारतीय समाज के इतिहास की रचना में अपेक्षाकृत अधिक पुनराविष्कार की आवश्यकता का अनुभव होता है। प्राचीन भारतीय इतिहास को समझने के प्रयासों में प्राचीन ग्रंथों के अतिरिक्त पुरावशेषों का भी उपयोग किया गया है, जिसमें अभिलेखों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

साहित्य की समीक्षा

प्राचीन भारतीय आर्थिक जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक व सैद्धान्तिक दोनों ही दृष्टियों से अनेक शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये हैं। इस सन्दर्भ में पूर्ववर्त्ती अध्ययनों के अन्तर्गत कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यों को लिया जा सकता है इन सामग्रियों में मुख्य आधार के रूप में समकालीन अभिलेखों का आद्योपान्त अध्ययन नहीं किया गया है, बल्कि मुख्य रूप से तत्कालीन साहित्यिक सामग्री व यात्रा-वृत्तान्त ही इन कार्यों के आधार रहे हैं। संस्कृत अभिलेखों का अध्ययन अनेक अनुशासनों के विद्वानों की रुचि का विषय रहा है। भाषा, साहित्य, इतिहास, समाजशास्त्र तथा नृविज्ञान के शोधकर्ताओं ने इसमें गहरी रुचि ली है। मौर्योत्तर काल के

www.ignited.in

अभिलेखों की लिपि पक्षों को लेकर ठाकुर प्रसाद वर्मा (2013).

कमला देवी (2016), तथा कुषाण अभिलेखों पर हरित्रिमा ने महत्त्वपूर्ण अध्ययन किया है।वाकाटक कालीन अभिलेखों पर महामहोपाध्याय वी.वी मिराशी (2016) एवं भगवती प्रसाद (2016) तथा गुप्तकालीन अभिलेखों के सामाजिक, सांस्कृतिक पक्षों को लेकर तृप्ता त्रिपाठी, सुरेखा गोयल , तथा प्रेम शर्मा (2016) ने विशिष्ट कार्य किया है।

मैत्रक अभिलेखों पर राजकुमार तिवारी (2017), हर्षकालीन अभिलेखों पर परमानन्द गुप्त (2016) तथा कलचुरि अभिलेखों के विविध पक्षों को लेकर वी.वी मिराशी उषादेवी बंसल इत्यादि के द्वारा प्रस्तुत कार्य उल्लेखनीय है।

प्राचीन भारतीय संस्कृत अभिलेखों को क्षेत्र विशेष के आधार पर वर्गीकृत कर, उनके सांस्कृतिक, सामाजिक तथा अन्यान्य पक्षों को लेकर जी.वी. आचार्य (2016), ए.एस.गाड्रे, पी. बी. दिशकलकर प्रणव कुमार दत्त पूनम बाला (2016) ने विवेचनात्मक अध्ययन किया है।

प्रस्तुत अध्ययन प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन पर केन्द्रित है। अतः इस सन्दर्भ में किये गये अध्ययनों का किंचित् विस्तृत विवेचन यहाँ पर अप्रसांगिक नहीं होगा। उपेन्द्रनाथ घोषाल (2017) का शोधकार्य “Contribution to the History of Hindu Revenue System” एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन है। इसमें तीसरी शती ई. पू. से लेकर तेरहवीं शती तक उत्तर भारत के राजस्व इतिहास की सामान्य रूपरेखा का पुनर्निर्माण करने का प्रयास किया गया है। मनुस्मृति और महाभारत में प्राप्त कराधान के व्यवहारिक नियमों को आधुनिक अर्थशास्त्री ऐडम स्मिथ, सिस्मौण्डी इत्यादि द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के साथ सम्बद्ध किया है। इस क्रम में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि आधुनिक कराधान व्यवस्था मूलभूत सिद्धान्त प्राचीन भारत में विद्यमान थे। परम्परागत भारतीय साहित्य में आर्थिक सिद्धान्तों की रूपरेखा प्रस्तुत करने में लेखक ने जिन संस्थाओं व आर्थिक सिद्धान्तों का विवेचन किया है, जगह-जगह उनकी तुलना तत्कालीन पश्चिमी संस्थाओं से भी की है। इस अपेक्षाकृत विस्तृत अध्ययन में अभिलेखीय पक्ष लगभग मौन रहा है।

एम.ए. बुच (2017) ने “Economic life in Ancient India” शीर्षक कृति में प्राचीन भारतीय आर्थिक जीवन को ग्यारह विभिन्न उपभागों में रखकर प्रस्तुत किया है। यह पूर्णतः भारतीय साहित्यिक साक्ष्यों पर आधारित है। धन के प्रति हिन्दू दृष्टिकोण को आधार बनाकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विविध पक्षों को वैदिक साहित्य, महाभारत, स्मृति साहित्य तथा बौद्ध साहित्य के आलोक में प्रस्तुत किया गया है।

आर.एस.शर्मा (2017) के “Light on Early Indian Society and Economy” शीर्षक शोध-प्रबन्ध में समाज और आर्थिक पक्ष का समन्वयात्मक विश्लेषण तत्कालीन साहित्य को आधार बनाकर किया गया है। यह अध्ययन प्राचीन भारतीय समाज में सामन्तवाद की विकसित होती हुई प्रवृत्ति को रेखांकित करता है। लेखक ने इसका मूल आधार सामाजिक जीवन के आर्थिक पहलू को माना है।

द्विजेन्द्र नाथ झा (2017) की “Revenue System in Post Mauryan and Gupta Times” शीर्षक रचना में ईसा पूर्व 185 से सन् 550 ई. तक की कालावधि में राजस्व व्यवस्था के स्वरूप को प्रस्तुत किया है। यह अध्ययन तत्कालीन विधिक ग्रंथों, साहित्यिक रचनाओं तथा आवश्यकतानुसार पुरालेखीय स्रोतों पर आधारित है। इसमें मौर्योत्तर तथा गुप्तकाल में राजस्व-व्यवस्था के अन्तर्गत कराधान के सिद्धान्त व अधिकार, राजकीय कर तथा सम्बद्ध अधिकारियों का क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

एस.के.मैती (2017) ने “Economic life in Northern India in the Gupta Period (A-D- 300-500)” शीर्षक ग्रन्थ में मुख्यतः फलित ज्योतिष, मुद्राशास्त्र, गुप्तकालीन साहित्य, चीनी, ग्रीक व लैटिन यात्रियों के यात्रावृत्तान्तों को आधार बनाकर गुप्तकालीन आर्थिक जीवन की एक रूपरेखा प्रस्तुत की है। यह रचना सांस्कृतिक समृद्धि, राजनीतिक प्रशासन तथा आर्थिक स्वतन्त्रता व समृद्धि के पक्ष को उद्घाटित करती है।

हरिपद चक्रवर्ती (2018) की पुस्तक “India as Reflected in the Inscriptions of the Gupta Period” एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन है। यहाँ गुप्तकालीन मुख्य अभिलेखों के आलोक में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक तत्त्वों का आकलन किया गया है। यह मुख्यतः गुप्तकाल और उत्तर भारत के प्रतिनिधि अभिलेखों पर आधारित है।

के.एम.श्रीमाली (2018) ने अपनी पुस्तक “Agrarian Structure in Central India and The Northern Deccan” में मध्य भरत से जुड़े पश्चिम भारत के एक विशेष क्षेत्र की कृषिगत संरचना को स्पष्ट किया है। यह अध्ययन इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि इसमें प्राचीन पश्चिमी भारत से प्राप्त साहित्यिक व पुरातत्त्वीय साक्ष्यों के आलोक में कृषि व्यवस्था के स्वरूप को व्यवस्थित किया गया है।

सरोज दत्त (2018) ने Land System in Northern India (A-D-400 & A-D-700) शीर्षक ग्रन्थ में उत्तरभारतीय भूमि व्यवस्था को भू-राजस्व, भू-स्वामित्व, भू-प्रकार, भू-सर्वेक्षण के अन्तर्गत विवेचित किया है। इसमें प्राचीन विधि ग्रन्थों के अतिरिक्त अभिलेखों को भी आधार बनाया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्राचीन भारतीयों का इतिहास का उद्देश्य आधुनिक इतिहासकारों के उद्देश्य से पू.ातया भिन्न था।

निष्कर्ष

गुप्तकाल तक भारत में भूमि पर राजा के मूलभूत पूर्वास्वामित्व की सिद्धांत लोकप्रिय हो चुका था। मनु ने तो राजा को समस्त भूमि का सर्वोच्च स्वामी माना है। गौतम ने ब्राह्मणों के अतिरिक्त सबको राजा की सम्पत्ति बताया है। मे स्थनीज के अनुसार भारत में किसान राजा को भूमिकर और उपज का, चैथाई हिस्सा देते थे क्यंोकि यहाँ समस्त भूमि राजा की सम्पत्ति मानी जाती थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ठाकुर प्रसाद वर्मा (2013), ।, बी। च। छाबड़ा और जी.एस.गई। (मके), कॉर्पस शिलालेख इंडिकम नउ, Vol-3 (संशोधित) प्रारंभिक गुप्तों के शिलालेख, नई दिल्ली, 2013।

2. कमला देवी (2016), के बीच पश्चिम बंगाल में खोजे गए शिलालेख पर एक नोटश्,प्रना सा 1111 स, 1, 1992, पीपी.161-164।

3. राजकुमार तिवारी (2017), कॉपर-प्लेट्स ऑफ सिल्हेट, अवस.स (7 वां -11 वाँ सेंट: A- D-J-सिलहेट, 2014।

4. जी.वी. आचार्य (2016), कलकत्ता, ।सरमा, डी। (म्कश्र, कमारिप्पा। एस.इसानवली, गौहाटी, 2016)

5. पूनम बाला (2016), सेलेक्ट शिलालेख बोम भारतीय इतिहास और नागरिकता 11 खंड 1 पर (दूसरा संस्करण।), कलकत्ता, 2016 (पुनर्मुद्रण, दिल्ली, 19)6), खंड 2, दिल्ली, 2016।

6. एम.ए. बुच (2017), 2016 में एपिग्राफिक खोजें।

7. आर.एस.शर्मा (2017) आईसनिदिर प्रिसालगा, कलकत्ता। 2016।

8. के.एम.श्रीमाली (2018) महाजिरों के प्श्रश्रैबतपचजपवदे, बाद में गुप्त, पुय पाब्लिश और यासोवमवान, कन्नौज, दिल्ली, (2016)।

9. हरिपद चक्रवर्ती (2018) लगभग पांचवीं-आठवीं शताब्दी ए डी। दिल्ली, 1999-2017।

10. द्विजेन्द्र नाथ झा (2017) धर्मसाल्ट्रा में बौधायन धर्मसिल्ट्र: द लॉ कोड्स आपस्तम्बा, गौतम, बौधियाना, और दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 2017।

11. हरिपद चक्रवर्ती (2018) के लसारवसवा, एड। डी। एम। भट्टाचार्य द्वारा, कलकत्ता: संस्कृत साहित्य परिषद, 2017।

12. सरोज दत्त (2018), कलकत्ता: एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, 2017।

13. जी.वी. आचार्य (2016), का दयाभिगाः द हिंदू लॉ ऑफ इनहेरिटेंस इन बेंगा एड ट्र, इंट्रो। एल। रोचर, न्यूयॉर्क OUP 2017 द्वारा एनोटेशन।

14. परमानन्द गुप्त (2016) एड। पी। ताराभूषण, कलकत्ता, रॉयल एशियाटिक द्वारा बंगाल की सोसायटी, 2016।

15. राजकुमार तिवारी (2017), । ईडी। जे। एल। शास्त्री, दिल्ली द्वारा: मोतीलाल बनारसीदास, 2017।

16. वी.वी मिराशी (2016) य एड।, ट्र। और आर। लैरीवियर, फिलाडेल्फिया द्वारा टिप्पणीः विभाग दक्षिण एशिया क्षेत्रीय अध्ययन, पेंसिल्वेनिया विश्वविद्यालय, 2017।

17. भावदेवताभ का प्रयागशिटाप्रकार 1 जज । जी सी वेदांततीर्थ, इंट्रो द्वारा। द्वारा एन। जी। मजूमदार, राजशाही: वीरेंद्र रिसर्च सोसाइटी, 2017।

www.ignited.in

Corresponding Author

Dr. Sanjay Kumar*

Department of History, Magadh University, Bodh Gaya, Bihar